भ्रम

भाग - ३

जब यह **'भ्रम–मयी'** संसार अथवा **'भ्रम–गढ़'** ही चलायमान, परिवर्तनशील और **'कूड़'** है, तो इस में प्रवृत्त दिमागी –

ख्याल
समझ
मनोभाव
निर्णय
विश्वास

आदि, भी –

ऊपरी
अधूरे
खोखले
धुँधले
भ्रम–मयी
कूड़

ही होते हैं ।

कूडु राजा कूडु परजा कूडु सभु संसारु ॥
कूडु मंडप कूडु माड़ी कूडु बैसणहारु ॥
कूडु सुइना कूडु रुपा कूडु पैन्हणहारु ॥
कूडु काइआ कूडु कपडु कूडु अपारु ॥
कूडु मीआ कूडु बीबी खपि होए खारु ॥
कूडु कूड़ै नेहु लगा विसरिआ करतारु ॥ (पृ. ४६८)

इसी लिए ऐसी **'भ्रम-मयी'** कूड़ बुद्धि द्वारा प्राप्त किए हुए -

सुख

मनोरंजन

रस-रंग

सयानपें

ज्ञान

परमार्थ

भी -

भ्रम-मयी

अधूरे

अपूर्ण

अनिश्चिय

कूड़

ही होते हैं ।

जगत सुख मानु मिथिआ झूठो सभ साजु है ॥ (पृ. १३५२)

गिआनु गिआनु कथै सभु कोई ॥
कथि कथि बादु करे दुखु होई ॥ (पृ. ८३१)

ऐसी **भ्रम-मयी बुद्धि द्वारा** रची हुई हमारी **'जीवन-सेध'** अथवा सम्पूर्ण जीवन भी अपूर्ण, परिवर्तनशील, कूड़ और दुख रूप ही है ।

मनमुख भरमि भुलै संसारु ॥ (पृ. ३६३)

साधो इहु जगु भरम भुलाना ॥
राम राम का सिमरनु छोडिआ माइआ हाथि बिकाना ॥
मात पिता भाई सुत बनिता ता कै रसि लपटाना ॥
जोबनु धनु प्रभता कै मद मै अहिनसि रहै दिवाना ॥ (पृ. ६८४)

अकाल पुरुष ने **आत्मिक मंडल** और **मायिकी मंडल** अलग-अलग और विरोधी बनाए हैं । 84 लाख योनियों में केवल इन्सान को ही **'तीक्षण बुद्धि'** और **'आज़ादी'** दी है, ताँकि वह अपनी विवेक बुद्धि से इन दोनों मंडलों को समझ कर **निर्णय और चयन** कर सके और अपनी सही **'जीवन सेध' बनाकर अपना**

जीवन सफल कर सके । इस महत्त्वपूर्ण निर्णय और चयन करने में **मार्गदर्शन और सहायता** के लिए अकाल पुरूष ने समय – समय पर, गुरू, अवतार, पीर, भक्त, महापुरूष आदि संसार में भेजे, जिन्होने अपने जीवन द्वारा जनता को सही आत्मिक जीवन सेध देकर, **मायिकी 'भ्रम गढ़' में से निकलने की प्रेरणा और मार्गदर्शन किया** और अपने बाद जनता के मार्गदर्शन और सहायता के लिए अपनी – अपनी **बाणियां छोड़ गए ।**

परंतु इन गुरूओं और भक्तों की संगति अथवा उनकी बाणी को पढ़ने, सुनने, गायन और कथा वार्ता करने के **बावजूद** हम त्रि – गुणी मायिकी **'भ्रम'** के मूल गुप्त भेद को समझ, बूझ और पहचान नहीं सके ।

आम जनता के लिए तो इस 'भ्रम' के गुप्त भेद को समझना या बूझना असंभव है – परंतु, आश्चर्य और दुख की बात यह है कि **तथाकथित भले – भद्र और बुद्धिमान भी इसी कूड़ भ्रम** के आन्तरिक गुप्त भेद से अनजान और कोरे हैं या जान – बूझ कर लापरवाह और मस्त हुए हैं ।

कई जन्मों से अनन्त –

पाठ – पूजा
कर्म – धर्म
जप – तप
हठ – साधना

आदि करते हुए भी, हम उसी **'भ्रम'** के अँधकार खाते में ही प्रवृत और खचित होकर **बर्बाद हो रहे हैं ।**

पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु ।। (पृ. १३३)

इहु जगतु ममता मुआ जीवण की बिधि नाहि ।। (पृ. ५०८)

माइआ माइआ के जो अधिकाई
विचि माइआ पचै पचीजै ।। (पृ. १३२६)

यह मायिकी अज्ञानता रूपी 'भ्रम' हमारे –

मन
बुद्धि

हृदय

अंतःकरण

जीवन

में इतना गहरा धँस–बस कर रस रूप होकर समा गया है कि हमारे मायिकी मंडल का **अभिन्न 'तत्–अंग'** ही बन चुका है ।

यह अज्ञानता रूपी 'भ्रम' हमारे जीवन के हर पक्ष में मैं–मेरी द्वारा प्रबल होकर प्रवृत्त और प्रकट हो रहा है ।

हमारे जीवन अथवा मायिकी आपे अपनत्व पर, इस 'भ्रम' का इतना जबरदस्त **'जादू'** चला हुआ है, कि यह **'भूत–प्रेत' बनकर** कई जन्मों से हमें चिपका हुआ है, जिससे छुटकारा पाना अति कठिन है ।

यह **'भ्रम का भूत'** हमारे शारीरिक, मानसिक एवं धार्मिक जीवन में कई जन्मों से अत्यन्त **सूक्ष्म 'सार–तत्'** बनकर, इतना रस रूप होकर समाया हुआ है, कि हम सम्पूर्ण रूप में **भ्रम का ही रूप बन चुके हैं** ।

जिस तरह 'अँधेरा' अपने अँधकार को **खुद** दूर नहीं कर सकता— उसी तरह हम अपने जन्म–जन्मों से चिपके हुए **'भ्रम के भूत' को अपने आप अलग करके त्याग नहीं सकते** ।

सारे धार्मिक ग्रंथ यही बताते हैं, कि **मानसिक अज्ञानता** जीव के भ्रम–भुलाव (illusion) में ही उत्पन्न हुई है ।

गुरबाणी में इस **'भ्रम'** को स्पष्ट रूप में यूँ दर्शाया गया है –

भादुइ भरमि भुलाणीआ दूजै लगा हेतु ॥ (पृ. १३४)

भरमै आवै भरमे जाइ ॥
इहु जगु जनमिआ दूजै भाइ ॥ (पृ. १६१)

त्रै गुण माइआ भरमि भुलाइआ हउमै बंधन कमाए ॥ (पृ. ६०४)

परंतु, आश्चर्य की बात है कि कई जन्मों से इस **'धुर की बाणी'** को पढ़ते–सुनते हुए भी अभी तक इस **'भ्रम' के विषय में पहचान और ज्ञान ही नहीं आया** । और हम भ्रम के 'अँधेर खाते' के **पुराने 'जीवन बहाव'** में ही अंधाधुध बहते जा रहे हैं और **घोर अँधकार में पलच–पलच कर दुखी हो रहे हैं**

।

हास्यप्रद बात तो यह है, कि इस भ्रम में विचरण करते और गलतान होते हुए भी हम अपने आप को भले–भद्र और विद्‌वान **समझे हुए हैं** । इस का नतीजा यह है, कि गुरबाणी के आत्मिक उच्च पवित्र उपदेशों के **'आन्तरिक भावों'** से हम –

अनजान
अज्ञानी
बे–परवाह
विमुख
श्रद्धाहीन और
वंचित

हैं, या जान–बूझ कर लापरवाह और 'मचले हुए' हुए हैं । हमारी इस हालत पर गुरबाणी की निम्नलिखित पंक्ति ठीक उतरती है –

साधो इहु जगु भरम भुलाना ।।
राम राम का सिमरनु छोडिआ माइआ हाथि बिकाना ।। (पृ. ६८४)

कुएँ के मेंढक सारी उम्र कुएँ के अँधकार में ही जीवन व्यतीत करते हैं और उनको अपनी भ्रम–मय **सीमित दुनिया के इलावा** और किसी दुनिया पर निश्चय ही नहीं आ सकता क्योंकि उन्होने बाहरी रोशनी की झलक ही नहीं देखी होती।

यदि उन्हें बताया जाये कि कुएँ के बाहर कोई और प्रकाश–मयी सुंदर दुनिया है, तो उन्हें कदाचित विश्वास ही नहीं आ सकता और रोशनी की बात को **'गप' या 'झूठ' समझ कर भुला छोड़ेंगे** या 'पड़ी होगी', 'हमें क्या' इत्यादि कहकर टाल देंगे ।

घुघू सुझु न सुझई वसदी छडि रहै ओजाड़ी ।
इलि पढ़ाई न पड़ै चूहे खाइ उडे देहाड़ी ।
वासु न आवै वांस नो हउमै अंगि न चंनण वाड़ी ।
संखु समुंदहु सखणा गुरमति हीणा देह विगाड़ी ।
सिंमलु बिरखु न सफलु होइ आपु गणाए वडा अनाड़ी ।
मुरखु फकड़ि पवै रिहाड़ी । (वा. भा. गु. ३२/४)

ठीक इसी तरह हमें भी जन्मों से मायिकी 'भ्रम गढ़' के अँधेर खाते में विचरण करते हुए, भ्रम – मयी अँधकार का ही दृढ़ निश्चय हो चुका है और इसी घोर अँधकार 'भ्रम गढ़' में विचरण करने को ही, **अपनी जीवन – सेध और मंज़िल समझे हुए हैं** ।

भ्रम – मयी अँधकार में हमारा निश्चय इतना दृढ़ हो चुका है, कि इस त्रि – गुणी मायिकी मंडल के 'भ्रम गढ़' के **अलावा**, और किसी प्रकाश आत्म – मंडल की हस्ती के विषय में **हमें कभी** –

ख्याल ही नहीं आता ।
धयान देने की आवश्यकता ही नहीं ।
विचार या खोज करने के लिए फुरसत ही नहीं ।
निश्चय ही नहीं आता ।

बजर कपाट काइआ गड़ भीतरि कूड़ु कुसतु अभिमानी ।।
भरमि भूले नदरि न आवनी मनमुख अंधा अगिआनी ।। (पृ –५१४)

भरमे भूला फिरै संसारु ।।
मरि जनमै जमु करे खुआरु ।। (पृ. ५६०)

सगल जनम भरम ही भरम खोइओ नह असथिरु मति पाई ।। (पृ. ६३२)

जब हम अपने भ्रम की अज्ञानता में, गुरबाणी की उपरोक्त पंक्तियाँ पढ़ते या सुनते हैं, तो हमें यही ख्याल आता है कि यह पंक्तियाँ हमारे ऊपर नहीं लागू होती क्योंकि हम तो बहुत सयाने, विद्वान और भले – भद्र हैं ।

हम समझते हैं कि जब हम वैज्ञानिक एवं आधुनिक नवीन रोशनी में रहते हैं, तो भ्रम हमारे पास नहीं आ सकता !! जब यह पंक्तियाँ हमारे पर लागू ही नहीं होती तो हमें इनकी तरफ **ध्यान देने और विचार करने की भी आवश्यकता नहीं है** ।

केवल भ्रम – मयी संसार में विचरण करने वाले जीवों को ही इन पंक्तियों की तरफ ध्यान देने या कमाने की आवश्यकता होगी, परंतु हम इस श्रेणी में नहीं आते !!

हम अपनी बुद्धि द्वारा कल्पित की हुई **'नवीन मायिकी दुनिया' को ही** –

विशेष

उच्च

अच्छी

सुंदर

सुखदायी

वास्तविक

समझ कर, इसमें खचित एवं मस्त हुए पड़े हैं, और अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ गवाँ रहे हैं ।

परंतु, गुरबाणी में इस मनोकल्पित भ्रम – मयी झूठी दुनिया के विषय में हमें यूँ ताड़ना की है –

जो दीस सो सगल बिनासै जिउ बादर की छाई ।। (पृ. २१६)

झूठी दुनीआ लगि न आपु वञाईऐ ।। (पृ. ४८८)

इहु जगु है संपति सुपने की देखि कहा ऐडानो ।। (पृ. ११८६)

इहु जगु धूए का पहार ।।
तै साचा मानिआ किह बिचारि ।। (पृ. ११८७)

आम भोली – भाली जनता तो इस **'मानसिक भ्रम'** को सहज ही समझ एंव मान सकती है – परंतु, दिमागी सयानों के लिए त्रि – गुणी मायिकी भ्रम के अँधकार में से निकलना अति कठिन है । क्योंकि उनकी बुदधि पर सयानप, विदवता, विज्ञान की चमत्कारिक रोशनी की पक्की **पर्त चढ़ी होती है,** जिस को उतारना अति कठिन है ।

इस मायिकी भ्रम की सयानप की **पर्त या गिलाफ उतारे बिना**, हमें अन्तर – आत्मा में आत्मिक – प्रकाश के जलवे के दर्शन नहीं हो सकते ।

इस का प्रत्यक्ष सबूत यह है कि इतने –

जप

तप

पाठ

पूजा

कर्म

धर्म

करती हुए भी, हमारा मानसिक 'भ्रम' दूर नहीं हुआ और हम उसी तरह पुराने मायिकी 'बहाव' में ही गोते खा रहे हैं। हमारा व्यक्तिगत सामाजिक और धार्मिक जीवन – मायिकी भ्रम – भुलाव के अँधकार अथवा **'भ्रम – गढ़' में ही ग्रसित हुआ है** ।

हमारी मानसिक, सामाजिक और धार्मिक अवस्था की गिरावट ही हमारे मायिकी 'भ्रम – भुलाव' का प्रतीक है।

हमारा व्यक्तिगत, सामाजिक, कौमी और समस्त विश्व का गिरता हुआ आचरण, सभ्य और व्यवहार ही हमारे मायिकी 'भ्रम – भुलाव' का प्रत्यक्ष सबूत और जीती – जागती तस्वीर है।

गुरबाणी हमारी इस अधोगति को यूँ दर्शाती है –

सचि कालु कूड़ु वरतिआ कलि कालख बेताल ॥ (पृ. ४६८)

उठे गिलानि जगति विचि वरते पाप भ्रिसटि संसारा।
वरना वरन न भावनी खहि खहि जलन बांस अंगिआरा।
निंदिआ चले वेद की समझनि नहि अगिआनि गुबारा। (वा. भा. गु १/१७)

भई गिलानि जगति विचि चारि वरनि आस्रम उपाए।
दसि नासि संनिआसीआ जोगी बारह पंथि चलाए।
जंगम अते सरेवड़े दगे दिगंबरि वादि कराए। ....
कलिजुगि अंदरि भरमि भुलाए। (वा. भा. गु. १/१६)

काली ऐनक से सब कुछ काला ही दिखता है – परंतु काली ऐनक की परछाई केवल दृष्टमान चीज़ों पर ही पड़ती है।

जब हमारे मन पर 'भ्रम' की 'पर्त' चढ़ जाए तो इस की छाया या अक्स **हमारी बुद्धि के सूक्ष्म** –

ख्यालों

भावनाओं

ज्ञान

निश्चय

श्रद्धा भावना

आदि पर पड़ता है ।

बहु वधहि विकारा सहसा इहु संसारा बिनु नावै पति खोई ।।
पड़ि पड़ि पंडित वादु वखाणहि बिनु बूझे सुखु न होई ।। (पृ. ५७०)

भरमि भूले बादि अहंकारी ।।
संगि नाही रे सगल पसारी ।।
सोग हरख मह देह बिरधानी ।।
साकत इव ही करत बिहानी ।। (पृ. ८८८)

माइआ ममता पवहि खिआली ।।
जम पुरि फासहिगा जम जाली ।। (पृ. ६६३)

सतिगुर की परतीति न आईआ सबदि न लागो भाउ ।।
ओस नो सुखु न उपजै भावै सउ गेड़ा आवत जाउ ।। (पृ. ५६१)

इस तरह हमारी –

दिमागी विद्या
आधुनिक विज्ञान
फिलोसफी
परमार्थ

आदि, पर भी इसी **'भ्रम'** (illusion) **के अँधकार अथवा मानसिक अज्ञानता की 'छाया' पड़ी हुई है**, और यह सब कुछ त्रि–गुणी मायिकी मंडल का ही 'खेल' है । **इस दिमागी विद्या की आत्मिक 'प्रकाश मंडल' तक पहुँच नहीं है ।**

कथनी कहि भरमु न जाई ।।
सभ कथि कथि रही लुकाई ।। (पृ. ६५५)

किआ पड़ीऐ किआ गुनीऐ ।।
किआ बेद पुरानाँ सुनीऐ ।।
पड़े सुने किआ होई ।।
जउ सहज न मिलिओ सोई ।। (पृ. ६५५)

दूसरे शब्दों में स्कूलों, कालेजों, यूनिवरसिटियों में जो दिमागी विद्या की पढ़ाई हो रही है, वह भी इसी श्रेणी में आती है –क्यों कि इन विद्यक सथानों में पूर्यतया त्रि–गुणी मायिकी मंडल का ही ज्ञान पढ़ाया जाता है । इस लिए –

ऊँची से ऊँची विद्यक पढ़ाई
नवीन वैज्ञानिक खोज
तीक्षण फिलोसफियाँ और
धार्मिक ज्ञान

भी आत्मिक मंडल के अनुभवी तत्–ज्ञान को –

जानने
समझने
बूझने
चीन्हने
सीझने
पहचानने
अनुभव करने

से असमर्थ हैं । इस लिए यह दिमागी विद्या हमारे मायिकी भ्रम–भुलाव अथवा अज्ञानता को **कम करने की अपेक्षा, और दृढ़ कर रही है** ।

पड़िआ मूरखु आखीऐ जिसु लबु लोभु अहंकारा ।। (पृ. १४०)

लिखि लिखि पड़िआ ।। तेता कड़िआ ।। (पृ. ४६७)

'दिमागी ज्ञान' केवल त्रि–गुणी मायिकी मंडल की सीमा के अंदर दिमागी जानकारी या ज्ञान ही प्रदान कर सकता है, जो हमारी **बुद्धि तक ही** असर करता है । ऐसा प्राप्त किया हुआ दिमागी ज्ञान बुद्धि और मनोभाव तक ही सीमित रहता है, जिस की आत्म–मंडल के अनुभवी प्रकाश तक पहुँच नहीं है ।

यदि **'अँधकार' केवल 'प्रकाश' से ही दूर हो सकता है** तो मायिकी **भ्रम–भुलाव का 'अँध–गुबार'** भी, **केवल अनुभवी प्रकाश अथवा 'नाम' से ही मिट सकता है** ।

धार्मिक अवस्थाओं में **दिमागी ज्ञान के आधार पर** गुरबाणी या गुरमति की

बाहरमुखी धार्मिक विद्या ही पढ़ाई जाती है, जो **'अनुभवी तत् – ज्ञान'** और **आन्तरिक 'अध्यात्मिक जीवन' प्रदान नहीं कर सकती ।**

यह आत्मिक 'तत् – ज्ञान'—अनुभवी आत्म – मंडल की प्रकाश – मयी **'चुप बोली' है जो हमारी बुद्धि की समझ एवं पकड़ से बिल्कुल दूर है ।** यह आत्मिक 'तत् – ज्ञान' गुर प्रसाद द्वारा साध संगति में विचरण करते हुए अन्तरमुख होकर सिमरन अभ्यास से अनुभव द्वारा ही प्राप्त हो सकता है ।

यही कारण है कि अनन्त धार्मिक प्रचार के होते हुए आम जनता आत्मिक गुप्त भेद अथवा 'तत् – ज्ञान' से बे – खबर, बेपरवाह, और विमुख होती जा रही है, जिस कारण मायिकी भ्रम – भुलाव का अँधकार बढ़ता जा रहा है ।

दूसरे शब्दों में, आत्मिक 'तत् – ज्ञान' के अनुभव प्रकाश के 'बिना' हमारी धार्मिक पढ़ाई, खोज और प्रचार हमारे 'भ्रम – गढ़' अँधकार के दायरे की **दिमागी 'कला' और 'शुगल' ही है ।** ऐसे दिमागी ज्ञानियों की 'अनुभव आत्म – प्रकाश' तक पहुँच नहीं हो सकती और न ही उनको इस की अवश्यकता ही प्रतीत होती है ।

पड़ि पड़ि गडी लदीअहि पड़ि पड़ि भरीअहि साथ ।।
पड़ि पड़ि बेड़ी पाईऐ पड़ि पड़ि गडीअहि खात ।।
पड़ीअहि जेते बरस बरस पड़ीअहि जेते मास ।।
पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीअहि जेते सास ।।
नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख ।। (पृ. ४६७)

प्राचीन समय में, धर्म स्थानों में आत्मिक जीवन वाले, 'तत् योग' के वेत्ता महांपुरूष बिराजते थे, आत्म – मंडल के अनुभवी प्रकाश मंडल में विचरण करते थे । अभिलाषी रूहें उनकी सेवा एवं सतसंग करते हुए, सहज ही अपनी मानसिक अज्ञानता का भ्रम दूर कर के, आत्म – प्रकाश के अनुभव ज्ञान का लाभ लेतीं थीं और आगे अन्य अभिलाषियों को 'जीवन – दान' देकर उनका जीवन भी सफल करती थीं ।

आजकल इस **आत्मिक अनुभव 'खेल' का 'काल' है –** जिस की वजह से संसार में मायिकी 'भ्रम' का अँधकार और भी गाढ़ा हो रहा है और त्रि – गुणी दुनिया में कलयुग के मायिकी भ्रम का जबरदस्त बोल बाला एवं व्यवहार है ।

इसी कारण जिस मानसिक अज्ञानता के भ्रम गढ़ में से गुरू साहिबान ने हमें निकाला था – परंतु, हम अपनी मायिकी अज्ञानता द्वारा, फिर उसी दिमागी भ्रम के अँध गुबार

में गोते रवा रहे हैं।

विणु नावै भ्रमि भुलीआ ठगि मुठी कूड़िआरि जीउ ।। (पृ. ७५१)

भरमि भुलाणे सि मनमुरव कहाअहि ना उरवारि पारे ।। (पृ. ७६७)

आसा भरम बिकार मोह इन महि लोभाना ।।
झूठु समग्री मनि वसी पारबगहमु न जाना ।। (पृ. ८१५)

बिनु नावै सभि भरमहि काचे ।। (पृ. ८४२)

माइआ मोहि कड़े कड़ि पचिआ ।।
बिनु नावै भ्रमि भ्रमि भ्रमि रवपिआ ।। (पृ. ११४०)

वास्तव में इस मायिकी मंडल के अँधकार में जन्म – जन्मों से विचरण करते हुए, इस झूठी दुनिया का विश्वास अथवा भ्रम – हमारे धुर अंदर अन्तःकरण में धँस – वस – रस रूप होकर इतना दृढ़ हो चुका है, कि हम इस झूठी दुनिया को ही असली, सच्ची और अविनाशी मानकर बैठे हैं। इसके इलावा और किसी मंडल के विषय में हमारा ज्ञान और **निश्चय** –

सुना – सुनाया
पढ़ा – पढ़ाया
समझा – समझाया
सीरवा – सिरवाया
ऊपरी सा

हमारे मन – बुद्धि तक ही सीमित रहता है। जो जल्दी ही 'अलोप' हो जाता है क्योंकि वह हमारे रव्यालों की **ऊपरी सी तरंग** ही होती है और हमारे देरवने, अनुभव करने अथवा **तजुरबे में नहीं आती**।

जब हम गुरबाणी में –

'कूड़ु सभ संसार'
'झूठी दुनियां' या
'सहसा इह संसारू है'

की पंक्तियाँ सुनते या पढ़ते हैं तो इनकी हम ऊपरी से मन से ही 'हामी' भरते हैं।

क्योंकि हमें इन पर पूर्ण रूप से विश्वास नहीं होता।

इस झूठी दुनिया में विचरण करते हुए हमारा मन— हर पल, हर घड़ी इसी झूठी दुनिया के साथ परसता रहता है और जन्म – जन्मों के इस 'अभ्यास' के साथ 'कूड़ संसार' ही हमारे मन, चित, बुद्धि और अंतःकरण में घुलमिल कर दृढ़ हो गया है और हम उसी का 'अभिन्न अंग' अथवा 'जीवन रूप' ही बन चुके हैं

कूड़ी रासि कूड़ा वापारु ॥
कूड़ु बोलि करहि आहारु ॥
सरम धरम का डेरा दूरि ॥
नानक कूड़ु रहिआ भरपूरि ॥ (पृ. ४७१)

माइआ मोहु सभु कूड़ु है कूड़ो होइ गइआ ॥
हउमै झगड़ा पाइओनु झगड़ै जगु मुइआ ॥ (पृ. ७६०)

जिन कै हिरदै मैलु कपटु है बाहरू धोवाइआ ॥
कूड़ु कपटु कमावदे कूड़ु परगटी आइआ ॥
अंदरि होइ सु निकलै नह छपै छपाइआ ॥ (पृ. १२४३)

इस मानसिक अज्ञानता के अटूट 'भ्रम' के अँध गुबार में ही हम अपना जीवन व्यतीत करते हैं। हमारे जीवन के हर पक्ष में, हर समय, इसी भ्रम का व्यवहार और बोल बाला है जिसमें से निकलना अति कठिन है।

इसी तरह **'जीव'** भ्रम गढ़ के घेरे अथवा सीमा में ही पलच – पलच कर आवागमन के चक्र में अपनी **ज्योति – स्वरूपी आत्मिक हस्ती को**, माया के 'अँध गुबार' में बहाते और बर्बाद करते हैं।

परंतु, आश्चर्य की बात तो यह है कि इस घोर 'भ्रम – गढ़' के अँधकार में अनन्त जन्मोंसे –

गलतान होकर
पलच – पलच कर
बर्बाद होकर
यम के वश में पड़कर

आवागमन के चक्र में विचरण करते हुए
भयानक दुखदायी तजुरबों में से निकलते हुए

भी हमें अभी तक इस –

मायिकी
दुखदायी
अनहोने
झूठे
भयानक

'भ्रम' के विषय में **'सूझ' नहीं आई,** और इस अटूट 'भ्रम – गढ़' में से निकलने का –

ख्याल ही नहीं आया
ज्ञान ही नहीं हुआ
आवश्यकता ही नहीं प्रतीत हुई
प्रयत्न तो क्या करना था !!

भरमि भुलाणा सबदु न चीनै जूऐ बाजी हारी ।। (पृ. १०१३)

मनु कठोरु दूजै भाइ लागा ।।
भरमे भूला फिरै अभागा ।। (पृ. १०६७)

माइआ मूठा चेतै नाही ।।
भरमे भूला बहुती राही ।। (पृ. ३७२)

इस के बाद 'जीव' के लिए यह बड़ी शर्म की बात है, कि 'धुर की बाणी' की प्रेरणा और मार्गदर्शन के 'बावजूद' हम इसी मायिकी **'भ्रम – भुलाव' के अँधकार में** गलतान 'होना ही' अपनी 'जीवन – सेध' और परम **धर्म – कर्म ही समझे बैठे हैं ।**

इस तरह गुरू साहिबान और अन्य महापुरूषों के उपदेश और ताड़ना की ओर से 'ढीठ' होकर, लापरवाह हो जाते या 'मचले' होकर अपने पुराने मायिकी 'जीवन बहाव' में अंधाधुंध बहते जाने को ही अपनी 'सयानप' और 'बढ़ाई' समझते हैं और

इन 'भ्रम – मयी' विद्यक, वैज्ञानिक और धार्मिक 'प्राप्तियों' पर ही आफरे फिरते हैं।

मन तूं मत माणु करहि जि हउ किछु जाणदा
गुरमुखि निमाणा होहु ॥ अंतरि
अगिआनु हउ बुधि है सचि सबदि मलु खोहु ॥ (पृ. ४४१)

सुणि बावरे तू काए देखि भुलाना ॥
सुणि बावरे नेहु कूड़ा लाइओ कुसंभ रंगाना ॥ (पृ. ७७७)

पंडित इसु मन का करहु बीचारु ॥
अवरु कि बहुता पड़हि उठावहि भारु ॥ (पृ. १२६१)

वास्तव में, मानसिक अज्ञानता के 'भ्रम' में विचरण करना ही, हमारा तथाकथित –

धर्म
जीवन–सेध
परमार्थ
कर्म–क्रिया

बन चुका है और अह्म में किए हुए बाकी सब 'धर्म – कर्म' और पाठ – 'पूजा' भी –

ऊपरी
खोखले
रूखे–सूखे
मन की झूठी तसल्ली
दिखावे मात्र और
पाखंड

ही बनकर रह जाते हैं।

हउ हउ करते करम रत ता को भारु अफार ॥
प्रीति नही जउ नाम सिउ तउ एऊ करम बिकार ॥ (पृ. २५२)

हउ विचि सचिआरु कूड़िआरु ॥
हउ विचि पाप पुंन वीचारु ॥ (पृ. ४६६)

यही कारण है कि हम अभी तक इस मानसिक 'भ्रम' में से निकल नहीं सके, और त्रि – गुणी झूठे मायिकी 'भ्रम गढ़' में ही गलतान होकर, पलच – पलच कर, अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ गँवा रहे हैं।

मनु माइआ मै फधि रहिओ बिसरिओ गोबिंद नामु ॥
कहु नानक बिनु हरि भजन जीवन कउने काम ॥ (पृ १४२८)

सगल जनम भरम ही भरम खोइओ नह असथिरु मति पाई ॥
बिखिआसकत रहिओ निस बासुर नह छूटी अधमाई ॥ (पृ. ६३२)

ऐसे भरमि भुले संसारा ॥
जनमु पदारथु खोइ गवारा ॥ (पृ. ६७६)

जनमु पदारथु दुबिधा खोवै ॥
आपु न चीनसि भ्रमि भ्रमि रोवै ॥ (पृ. ६८६)

(क्रमशः.....)